दिव्य जीवनकी ओर

संत श्री आशारामजी महाराज

श्री योगवेदान्त सेवा समिति

दिव्य जीवन की ओर

[चेटीचण्ड़ महोत्सव – साधना शिविरके उपलक्ष्यमें]

*

सदा शान्त रहो, निर्विकार रहो ।
सम रहनेकी चेष्टा करो ।

पूज्य संतश्री आशारामजी महाराज

*

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आशाराम आश्रम
मोटेरा ० साबरमती ० अहमदाबाद

प्रकाशक :
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
मोटेरा आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद

© श्री योग वेदान्त सेवा समिति

मूल्य : साठ पैसे

मुद्रक : रतिलाल अंबालाल पटेल
अक्षर प्रेस,
११, आशिष इन्डस्ट्रिअल एस्टेट,
नागरवेल हनुमान रोड, अहमदाबाद-३८० ०२३

× जीवन – झलक ×

परम पूज्य संत श्री आशारामजी महाराज का जन्म सिन्ध प्रान्त के बेराणी गाँव में १७ अप्रैल १९४१ को सुप्रतिष्ठित नगरसेठ श्री थाहुमल सीरुमलानी के पवित्र गृह में हुआ था। पूज्यश्री के जन्म मात्र के तुरन्त पश्चात् ही कई अलौकिक घटनाएँ घटी और कुटुम्ब की समृद्धि व सुख-शान्ति में भी अभूतपूर्व वृद्धि होने लगी। 'पूज्यश्री' के बालपन के हाव-भाव एवं तेजोमय मुखमण्डल को देखकर तीन वर्ष की अवस्था में ही उनके कुलगुरु ने भविष्यवाणी कर दी थी कि 'यह बालक भविष्य में महान् संत बनकर कई लोगों को जन्म-मरण के कष्टों से छुड़ाएगा।'

भगवान बुद्ध की तरह ही संसार के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ माने जाने वाले सुख भी स्वामीजी को आकर्षित नहीं कर सके। वे शीघ्र ही सांसारिक विषयों से उपराम हो उठे और उन्हों ने बीहड़ जङ्गलों व पहाड़ों का रास्ता लिया। लम्बी ७–८ वर्ष की कठोर तपस्या के पश्चात् पूज्यश्री ने अपनी मंजिल प्राप्त की अर्थात् आत्मसाक्षात्कार किया ओर जिस आत्मिक आनंद को वे प्राप्त हुए उसीका पान आज साबरमती नदी के किनारे 'संत आशाराम आश्रम (मोटेरा गाँव के पास) में आये हुए जिज्ञासु भक्तों को करा रहे हैं।

पूज्यश्री का शिष्यगण सारे गुजरात में और बाहर भी फैला हुआ है। हर सप्ताह हजारों दर्शनार्थी स्वामीजी के आश्रममें आते हैं और नवजीवन का संदेश पाकर अपने व्यवहारजगत् में पुनः कार्यलीन होते हैं।

संपादकीय—

चेटीचण्ड़ महोत्सवके उपलक्ष्य में पूज्य संत श्री आशारामजी महाराज की सन्निधि में जो महोत्सव और साधना शिविरका आयोजन किया जाता है उनका महत्त्व तो देखते ही बनता है। इस छोटी सी पुस्तिका में इस अवसर पर स्वामीजी के दिये हुए दो अमृतप्रवचनों के कुछ अंश संकलित किये गये हैं।

यह है आपके दिव्य संदेश का नवनीत :

अभी हम सुनते हैं-शरीर अलग है, आत्मा अलग है। शरीर मरता है, आत्मा अमर है। परन्तु हम शरीर को अलग नहीं देख पाते। सद्‌गुरु मिल जाय, तो ऐसा अनुभव करा देते हैं। उस समय अपने को स्पष्ट यह महसूस हो जाता है कि यह शरीर मेरा पड़ा है और मैं इससे अलग हूँ। कुल, जाति के भेदभाव तुच्छ भासते हैं। मैं वकील हूँ, मैं डाक्टर हूँ, मैं व्यापारी हूँ, मैं विद्यार्थी हूँ, मैं सब नाम रूप के भेद यदि लोकेश्वर को पाना है तो मिटा दो। परन्तु आप लोगों को राजी करना चाहते हैं। इससे न तो लोकेश्वर ही मिलता है और न लोग ही राजी होते हैं। लोकेश्वर राजी हो जायेंगे तो सब कुछ मिल जाता है, जब कि लोग यदि राजी भी हो गए, तो वे आपको क्या देंगे? अधिक से अधिक आप के मरने के उपरांत आपके पीछे रो लेंगे, और क्या इतना ही तो ...?

हमें आशा है कि स्वामीजी की अन्य पुस्तकों की तरह यह पुस्तिका भी साधकों को नई प्रेरणा देगी।

— संपादक

वरूण अवतार

[१-४-७६ गुरुवार, चैत्र सुद-२ (चेटीचण्ड)]

आज सुबह से ही आश्रम में बहुत चहलपहल है। आश्रम को आकर्षक ढंग से सजाया गया है। कुछ सेवाधारी अभी भी कहीं कहीं सजावट में वृद्धि करने में लगे हुए है। स्वामीजी की कुटिया के दोनों तरफ के विशाल खुले प्रांगण को पण्ड़ाल से ढाँक दिया गया है। रंगबिरंगी झण्डियाँ और बिल्वपत्र के तोरण पण्ड़ाल में शोभायमान हो रहे हैं।

आश्रम के प्रवेशद्वार में आते ही भक्तों को द्वार के ऊपर एक सुन्दर पर्दे पर लगे यह शब्द पढ़ने में आते हैं-
"चेटीचण्ड महोत्सव एवं ध्यानयोग शिविर।"

वह एक तरफ विविध प्रकार का रुचिपूर्ण आध्यात्मिक साहित्य रखा हुआ है।

ऊपर सूर्य भगवान ने अग्नि बर्साना शुरू कर दिया है। मगर चिंता की कोई बात नहीं है, क्यों कि ठंड़े पानी की समुचित व्यवस्था है और सेवाधारी भी सब को ठंड़ा पानी पिलाकर पुण्य कमा रहे हैं। धन्य हैं ये सेवाधारी भी! दो रातों के जगे हैं, फिर भी थकान की कोई शिकन इनके चेहरे पर कोई नहीं ढूँढ़ सकता! स्वयं के लिये जीना तो सभी जानते हैं, जीवन उनका सफल है जो दूसरों के लिये जिएं।

अब जरा नदी की ओर भी निहारें! अहा! साबरमती नदी का दृश्य भी कितना मनमोहक है! यह भी आश्रम

के अेक किनारे को बिल्कुल छूते हुए बह रही है। नदी और आश्रम का यह मैत्रीभाव युगों युगों से चला आ रहा है। दोनों एक-दूसरे के बिना रह नहीं सकते। और यह साबरमती नदी तो सब भक्तों को जब तक उनका पद-प्रक्षालन नहीं कर लेती तब तक आश्रम में प्रवेश नहीं होने देती। जैसे कह रही हो—'तुम आश्रम में पवित्र भावों को ग्रहण करने जा रहे हो तो पवित्र बन कर जाओ' और जब पुनः लौटते हैं तो उन के पैरों को धोती हुई कह रही लगती है—'संत से बहुत कुछ पवित्रता लूट लाए हो, कुछ मुझे भी दे जाओ!' ऐसा पवित्रता की लेन-देन का सौदा करती हुई साबरमती में इन दिनों जरा पानी कम है। किन्तु उससे क्या? देखो-दूर दूर तक आश्रम की ओर अग्रसर होते हुए भक्तों के झुण्ड तो कम नहीं हैं? अहा! कितने उत्साह से वे आश्रम की ओर पग बढ़ा रहे हैं!

आज वरुण अवतार (झूलेलाल) का प्रागट्य दिन (चैत्र सुद-२) है। उसे आश्रममें मनाया जा रहा है। उसी मौज-मस्ती के साथ सबको परम पूज्य स्वामीजी श्री आशारामजी महाराज एवं 'संन्यास आश्रम'से पधारे हुए अन्य २-३ संन्यासियों का वचनामृतप्रवाह पान करने का लाभ मिलने वाला है।

वायुमंडल में जोर से जयजयकार गूंज उठती है-

'सत्गुरु देवकी...जय।'

स्वामीजी मंच पर पधार गये हैं।

सभी की दृष्टि मधुर मुस्कान लिये मंच पर बिराजमान पूज्य स्वामीजी की तरफ है। उनके दाहिनी ओर संन्यास

आश्रम के संन्यासी पूज्य श्री विश्वदेवानन्दजी एवं उनके साथ पधारे दो अन्य संन्यासी विराजमान हैं। स्वामीजी के दाहिनी ओर नीचे मधुर संगीत गाने वाले भक्तों की भजन मंडली भी अपने विभिन्न साजों के साथ उपस्थित है।

'बिना सच्चे सत्संग के मन का मैल नहीं जाता।' इस भावका (गुजराती) भजन दो बालिकाएं खड़ी होकर अपने मधुर स्वरमें गा रही हैं—

'मनड़ानो मेल महीं जाय...।'

अब श्री योग वेदांत सेवा समिति के प्रमुख (एक साधक भाई) खड़े होकर माईक पर बोलते हैं।

साधक—

'परमपूज्य स्वामीजी, भाइयो एवं माताओ, समाजके विशाल जनसमुदाय को जगाने के लिये अपनी समिति विविध प्रकार के प्रोग्राम हाथ में लेती है। आज का चेटी-चण्ड का उत्सव आश्रम में मनाना भी उसी प्रवृत्ति का एक अंग है। पूज्य स्वामीजी वेद, उपनिषद, गीता, योगवासिष्ठ आदि के प्रमाणों सहित जब अपनी अमृतवाणी का लाभ हमें देते हैं, तब हम आत्मानन्द में सराबोर हो उठते हैं। प्राणायाम, ध्यान, सत्संग के रूप आदि में पूज्य स्वामीजी के अकथनीय प्रयास से अेक योग्य साधक मण्डल तैयार होता जा रहा है। आज इस शुभ अवसर पर सेवा समिति के आग्रह से संन्यास आश्रम का संतसमाज भी आया हुआ है। उनके प्रवचन का भी हमें लाभ मिलेगा। (पुष्पहार हाथ में लेकर) अब मैं समिति की ओर से मंच पर बिराजमान पूज्य स्वामीजी एवं आप सब जनता-जनार्दन का स्वागत करता हूँ।'

साधक स्वामीजी को हार पहनाते हैं। अेक साथ हजारों कण्ठों से 'सत्गुरुदेव की जय' की ध्वनि निकलकर गगन में गूँज उठती है।

स्वामीजी सबको ३ बार हरि ओऽम् शांति बुलवाते हैं, फिर धीरे धीरे अपनी मधुर वाणी में बोलना प्रारंभ करते हैं—

स्वामीजी :

'आज से करीब ९६०–६२ वर्ष पहले ठट्टा जिले में मरख बादशाह अपने भोलेपन के कारण अपने वजीर आदि के कहने में आकर जनता पर जुल्म ढाने लगा।

सत्ता के आगे किसकी चले? जनता पर जुल्म होने लगे। कुछ लोगों ने विचार किया कि इन्सान यदि आज गल्ती करता है तो कल सुधर भी सकता है। बादशाह भी आखिर है तो इन्सान ही।

'जले विष्णु, थले विष्णु....'

इसको ध्यान में रखकर उन्होंने आध्यात्मिक योग किया और दरिया के किनारे बैठकर भगवान का ध्यान करने लगे।

नदी, तालाब आदि के किनारे बैठते हैं तो चित्त को एकाग्र करने में जल्दी सफलता मिलती है। और एकाग्र चित्त से कोई भी इच्छा या संकल्प होते हैं, वह जल्दी सफल होते है।

जहाँ ऐसा वातावरण पैदा हो जाय जिस में मनुष्यकी शक्ति एवं पुरुषार्थ भी थक जाय और कार्य सिद्ध न हो तो वहाँ भगवानकी शक्ति प्रकट होती है। उसे अवतार

कहते हैं। अवतार संसारी तापसे जलते हुए मनुष्यों को शांतिका पैगाम सुनाने आते हैं।

अवतार दो प्रकार के होते हैं—

१. नित्य

२. नैमित्तिक

किसी विशेष निमित्त से जो प्रगट होते हैं, वे नैमित्तिक अवतार कहलाते हैं। भगवान श्रीराम, श्रीकृष्ण, नृसिंह अवतार, मच्छावतार आदि नैमित्तिक अवतार हैं।

तो ऐसे जो लोग समुद्र के किनारे अनुष्ठानमें बैठे थे, उनको चालीसवें दिन पानी के ऊपर एक ऐसी शक्ति, एक ऐसा प्रकाश ध्यानमें दिखा, जो बढ़ता गया। उसने एक विशेष आकृति ले ली और किसी तेज पुंज घोडे पर सवार होकर आता हुआ लगा। उस ईश्वरीय शक्ति ने उनको बताया कि रत्नानी के कुलमें अमुक दिन मेरा जन्म होगा। आप लोग बादशाह को वहाँ भेजना। वह नहीं आयेगा और वजीर उसकी जगह आयगा। उसको मैं समझाऊँगा। वजीर भी तो अपना ही अंश है। जो दूसरा दिखता है, वह हमारे ही अन्दर का भाव है। दूसरा है नहीं। बिजली एक ही है। जिस बटन को दबाने से बिजली जलती है, वह बटन बनाने की कम्पनियाँ भले ही अलग अलग हों, बल्ब एवं उसके निर्माता भले ही अलग अलग हों, थंभे भले ही अलग अलग हों, तार भले ही पीतल या लोहे के हों, परन्तु बिजली तो वही है। प्रकाश वही है। चाहे लाल बल्ब से आता हो, चाहे हरे बल्ब से। इसी प्रकार परमात्मा एक ही है। वही शक्ति सबमें प्रकाशित है। जब हम एकाग्र चित्त होते हैं, तब उसकी शांति एवं

दिव्यता का थोडा आभास हमें होने लगता है। जब हम मन एवं इन्द्रियों से ऊपर उठते हैं, तब संघर्ष एवं तनाव खत्म हो जाते हैं। वहाँ इन संघर्षों व तनावोंकी पहुँच नहीं हैं।

वे लोग यह दिव्य दर्शन करके गद्‌गद हो गये और अपने भाव प्रकट करने लगे—'भगवान! आप की माया आप ही जानें। हम आपकी शरण हैं। हम राजा के विरोध में खडे नहीं हो सकते। हम अपनी शक्ति से उसे झुका नहीं सकते, परन्तु उनकी दुष्टता के बदले में शुभ संकल्प तो कर ही सकते हैं। भगवन्। उनको भी सद्‌बुद्धि दें।'

(स्वामीजी की नजर दूर नदी में पड़ती है। ऊपर से सूर्य आग बरसा रहा है और नीचे नदी की तप्त बालुका पैरों को झुलसा रही है, फिर भी लोगों के काफिले के काफिले आश्रम की ओर पैर बढ़ाए चले आ रहे हैं। सत्संग के प्रति उनकी निष्ठा देखकर उनका हृदय अपूर्व भाव से भर उठता है। वे थोड़ी देर चुप रह कर कहने लगते हैं-)

स्वामीजी :

'आप लोगों की ऐसी भीषण गर्मी में भी जब ऐसी आध्यात्मिक पिपासा देखता हूँ, तो हृदय गद्‌गद हो उठता है।' (थोड़ी देर के लिये पूज्यश्री की आँखें बन्द हो जाती हैं, जैसे वे किसी गहरे भाव में चले गये हों। फिर धीरे धीरे कहना प्रारंभ करते हैं—)

'सेवा से स्वामी अपना स्वामीपना भूल जाता है, सेवा से शेठ अपना शेठपना भूल जाता है, सेवा से जीव अपना जीवपना भूल जाता है, तो ईश्वर अपना ईश्वरपना कैसे

नहीं भूलेगा? सेवा में ऐसी शक्ति है कि सेवक सेवा करते करते स्वामी बन जाता है।

(पुनः प्रवचन के विषय पर आकर)

'तो जिस दिन ठट्टा में उस ईश्वरी शक्ति का रत्नानी के घर प्रादुर्भाव हुआ, उस दिन ठट्टा वैसे ही झूम उठा जैसे श्रीकृष्ण की क्रीडाओं से गोकुल झूम उठा था। यहाँ हम थोड़ा ध्यान से देखें तो श्रीकृष्ण अवतार और झूलेलाल अवतार-दोनों में बहुत साम्यता है। श्रीकृष्ण को मारने के लिये कंसने जैसे पूतनाको भेजा था वैसे ही राजा ने वजीर के द्वारा गुलाब के पुष्प में तीव्र जहर डालकर उस दिव्य बालक की मौत के निमित्त भिजवाया। "न रहेगा बांस न बजेगी बाँसुरी।" परन्तु जब वजीर स्वयं वहीं आया और उसे देखा तो देखता ही रह गया। पहली ही नजर में उसे महसूस हो गया कि यह कोई ऐसा-वैसा साधारण बच्चा नहीं है। उसके चहेरे पर एक विशेष तेज की झलक उसे मिली! वजीर तो उसे क्या पहचानें, परन्तु वजीर को देखकर झूलेलालने मन ही मन कहा (स्वामीजी एक विशेष प्रकार से गर्दन हिलाते हुए कहते हैं), 'तू तो मुझे नहीं जानता, परन्तु मैं तुझे जानता हूँ प्यारे!' जैसे श्रीकृष्णने पूतना को कहा था कि आओ मौसी मैं तुझे जानता हूँ कि यहाँ क्यों आई हो?

(सभी हँस पड़ते हैं।)

स्वामीजी :- 'उस छोटे से लाल को झूले में प्रेम से झुलाते झुलाते उसका नाम ही झूलेलाल पड़ गया।'

स्वामीजी गाते हुए बोलते हैं-'झूले झूले-झूले, झूलेलाल।'

सभी कहते हैं—'आयोलाल।'

स्वामीजी—'झूलेलाल...।'

सभी—'आयेलाल....।'

और देखते देखते कुछ जवान डेढ़ डेढ़ फूटकी डंडियाँ दोनों हाथों में लेकर मंच के सामने के थोड़े से खाली मैदान को आकर भर देते हैं और उन्हें बजाते हुए मंडलाकार घूमते झूम झूम कर गाते हैं—'आयो लाल-झूलेलाल...।' धुन की गति बढ़ती जाती है। ढोलक एवं अन्य वाद्य बजानेवाले भी झूम रहे हैं तो अन्य सब तो झूमेंगे ही। थोडी देर तक तो ऐसा लगता है जैसे यहाँ प्रवचन नहीं हो रहा है और झूमते हुए लोग ही नाच रहे हैं। परंतु यह कौन जानता है कि गूढ़ से गूढ़ विषय समझाने के लिये इस प्रकार बीच में मनोरंजन देने से प्रवचन केवल प्रवचन ही नहीं रहता, वह पचता भी रहता है। और पचता रहता है तो फिर वह कितना ही गरिष्ठ होवे, कितना ही अधिक हो, उसकी उल्टी नहीं होती और समय आने पर वह अपना रंग दिखाता है। अन्यथा कोई कारण नहीं कि शहर से इतनी दूर आश्रम, इतनी तेज धूप, दोपहर का समय और उस पर भी शहर में राग रंग न मनाकर इधर जंगल में इतनी बड़ी मात्रा में लोग आवें! यह इतनी बड़ी मात्रा में श्रद्धालु लोगों की संख्या पूज्य स्वामीजी के पूर्व दिये गए प्रवचनों के पचने का ही 'थर्मामीटर' है, यह कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। थोड़ी देर में स्वामीजी का हाथ का इशारा पाकर सभी पुनः अपने स्थान पर बैठ जाते हैं।

स्वामीजी :

'तो ज्यों ही वजीर ने झुककर झूलेलाल को वह जह-

रीला पुष्प सुंघाया तो उन्हें तो कुछ नहीं हुआ, परन्तु उन्होंने वजीर की दाढ़ी में सोयेसोयेही कसकर एक लात ऐसी जमाई कि निमिष भर के लिये वजीर जैसे बेहोश हो गया। बेहोशीकी हालतमें भविष्य का उसे बहुत कुछ दिख गया, जैसे कोई सिनेमा की रील उसके सामने घूम गई हो। उसने देखा कि दरिया में से कोई प्रकट हुआ है, वह राजमहल में घुस आया है। राजा और राज्य के विरोधी लोग भी घुस आए हैं और राजा साहब आदि को पकड़ कर बंद कर रहे हैं। दरिया में कोप उत्पन्न हो गया है। हिन्दू-मुसलमान में कोई भेद नहीं रह गया है। ये सब घटनाएँ उस थोड़ी देर की बेहोशी की अवस्था में उस वजीरने देख ली!

इतिहास में कदम-कदम पर ऐसे कई प्रसंग बन गए हैं, जिनको बाद में उत्सव का रूप दे दिया गया ताकि मनाते समय उसकी याद रहे और वह आदर्श समाज में बना रहे। परन्तु कालांतर में उत्सव उत्सव ही बना रहता हैं, उल्टा उसका स्वरूप बिगड़ता ही है, सुधरता नहीं और उस उत्सव का हेतु, उसका लक्ष्यार्थ विलीन हो जाता है। उत्सव के उस स्वरूप में समाज को स्फूर्ति देने की सामर्थ्य फिर नहीं रहती। इसमें भी डांडिया रास और कीर्तन में भाई मस्त हो जाते हैं, ज्योत जगा दी जाती है और इसका वास्तविक हेतु लोग भूलते जा रहे हैं। उसकी तरफ किसी का ध्यान नहीं जाता। इस उत्सव को वास्तविक आदर्श स्वरूप देने के लिये ही आश्रम में मनाने की व्यवस्था की गई है।

यह उत्सव संदेश देता है कि तुम्हारे जीवन में बढ़ासे

बड़ा दुःख, मरणासन्न कष्ट भी आ जाए तो भी घबराएँ नहीं। तुम्हारे ही अन्दर अनन्त शक्ति छिपी हुई है, उसे जगाओ। वह भगवान को खींचकर लायेगी। उस अनन्त शक्ति को योगी प्रकट कर सकते हैं। लेकिन जन-साधारण उसे कैसे पावें? वह भी योग का सहारा ले। इतना कुछ करना शुरू करें कि आगे जाकर आत्मसाक्षात्कार कर सके। योग कहता है कि प्राण अपान की गति को सम करके हम उस आनन्द को प्राप्त कर सकते हैं।

जब हम प्राणायाम करते हैं तो एक नासिका से श्वास लेकर दूसरे से छोड़ते हैं और दूसरे से श्वास लेकर पहले से बाहर निकालते हैं। यह अनुलोम-विलोम प्राणायाम हैं। नासिका के बाए द्वार को इड़ा और दाएं को पिंगला कहते हैं। इन दोनों इड़ा और पिंगला के बीच की नाड़ी सुषुम्ना कहलाती है। जब इस सुषुम्ना नाड़ी का द्वार खुलता है तो हमारे चित्त में सहज शांति, सहज प्रसन्नता और सहज आनन्द प्रकट होता है। और यह सहज शांति, सहज आनन्द, सहज प्रसन्नता सब कामों की सफलता की कुँजी है।

जब हम यह डाँड़िया रास खेलते हैं, तो दायें और बांयें पैरों को जमीन पर पटकते हैं। पैरों को तालबद्ध इस प्रकार पटकने से अनजाने में सुषुम्ना का द्वार खुल जाता है। स्वामीजी कह रहे हैं, इसलिये मत मानो इस बात को। यह आप स्वयं प्रयोग कर के देखें। योग वेदान्त रसायन विज्ञान की तरह प्रयोगात्मक विज्ञान है। इस उत्सव में जब हम यह कीर्तन व नृत्य करते हैं, तो सुषुम्ना नाड़ी चालू हो जाती है और प्राण, क्रिया और भाव तीनों बलों का विकास अनजाने ही होता है।

प्राण और मन का परस्पर सम्बंध है। जब प्राणायाम करते हैं और प्राण वश में होते हैं, तो मन भी वश में होने लगता है। क्यों कि दोनों का नाव और नाविक जैसा सम्बन्ध है। नाव नाविक को ले जाती है तो नाविक भी नाव को ले जाता है। तो नाचते-कूदते जब प्राणों के साथ मनोनिग्रह होने लगता है, तो श्वासोच्छ्वास के साथ पुराने जमे हुए मन के विजातीय कुसंस्कार मिटने लगते हैं और मन निर्मल होता जाता है। इस लिये इस डाँड़िया रास का समाजव्यापी फायदा होता है। और भी ऐसी ही कई लाभ की बातें हैं।

उत यानि समीप (नजदीक), ईश्वर के नजदीक जाने का जो रास्ता है, वह उत्सव। और आजकल तो कोई भी ऐरा-गैरा छोटी सी मूर्ति झूलेलाल की बनाकर अगरबत्ती कर लेता है और बन जाता है एजेन्ट-झूलेलाल का। पैसों के चक्कर में कई लोग भी आ जाते हैं।

ऐसे ही एक माई किसी के चक्कर में आ गई थी। उसने मुझे अपनी आपबीती सुनाई थी। उसे किसी ने बताया कि तुम्हारे किसी पड़ोसी ने तुम्हें कुछ खिला दिया है, इसलिये तुम्हारे मन में इतनी बेचैनी और अशांति है। उसने एक बर्तन में से कुछ राई के दाने, मांस का टुकड़ा और भी एक दो चीजें निकाल कर दिखाई और कहा कि ये चीजें तुम्हें उसने किसी प्रकार खिला दी हैं, जो निकली है। अब बताइये, पहले कभी खिलाई हुई चीजें इतने दिन बाद साबूत मिल सकती हैं? परन्तु माई बेचारी भोली भाली-उसके कहने में आ गई। उसने उसको एक कागज भी दिया और कहा कि घर जाकर इस कागज

को पानी में भिगोना और देखना, जिसने भी तुम्हें ये चीजें खिलाई हैं, उसका चित्र इसमें नजर आयेगा। जब उसने ऐसा किया तो वास्तव में कागज पर धुंधला सा एक किसी स्त्री की आकृति का चित्र बन गया था।

आप सोच रहे होंगे कि चित्र बन गया, यह तो चमत्कार ही हुआ। परन्तु इसमें चमत्कार की कोई बात नहीं हैं। आप भी ऐसा कर सकते हैं। साबुन लेकर एक कोरे कागज पर कोई भी चित्र बनाओ अथवा कुछ लिखो। जब तक कागज सूखा है, वह चित्र नहीं दिखेगा। जब उसको पानी में भिगाओगे, तो चित्र उभर आयेगा।

ऐसे तत्वों ने झूलेलाल को भी ऐसा ही बना लिया है और उनके द्वारा लोगों से लौकिक लाभ लेना शुरू कर दिया है। सत्ता लोगों की, धन लोगों का, शक्ति लोगों की और उस सब से फायदा उठाकर आगेवान बनते हुए स्वयं का यश बढ़ाने की चेष्टा होती है। इसी को लक्ष्य करके उत्सव का रूप बनाते हैं। उत्सव के नाम पर, समाज में डांडिया नाच के नाम पर अश्लील एवं निंदित व्यवहार होता है। जो उत्सव ईश्वर की तरफ बढ़ानेवाला था, आत्मसाक्षात्कार के लक्ष्य की तरफ बढाने का साधन था उसे निंदित रूप देकर उसका दुरुपयोग किया जा रहा था।

शाम को इस प्रोगाम के बाद महावीर व्यायाम शाला के कुछ चुने हुए पहलवानों की कुश्तियाँ (मल्लों का दंगल) भी देखने को मिलेगी साथ ही कुछ आग के गोले में से निकलना व अन्य इसी प्रकार के प्रोग्राम व्यायामशाला के उत्साही जवान आपको दिखाएंगे (यह स्मरण रहे कि

स्वामीजी का इस प्रकार के क्रिया-कलापों जिसमें समाज की शारीरिक व मानसिक उन्नति होती है, सदैव प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग रहता है)।

पिछले समय से मेरे मनमें चल रहा था कि इस प्रकार के उत्सव, व्यायाम के प्रोगामों आदि में ध्यान दें या नहीं? मनमें चलता, यदि संत इनमें हाथ नहीं डाले तो ही ठीक। फिर विचार आया कि समाज को संतोंका सदैव मार्गदर्शन मिला है और जिस समाज पर सन्तों की देखरेख नहीं रही, वे पथभ्रष्ट हो गए और विनाश की और चल पड़े। आप स्वयं ही सोचें कि समय समय पर इस प्रकार उत्सवों को यदि नहीं सम्हाला जाय, तो इनमें नर्तकियाँ, नाचरंग, पीना-पिलाना, नशा करना और खाने-पीने का राजस-तामस व्यवहार घुस जाता है और हम भटक जाते हैं। कुछ वर्ष पूर्व डीसामें इस प्रकार का उत्सवों को मोड़ने का प्रयास किया था जो सफल हुआ है और अब अहमदाबाद में भी इसको सही मोड़ देने में आप सबकी कृपा से ६०% सफलता हासिल हो गई है।

झूलेलाल का भी अन्य अवतारों की तरह वरूण अवतार है, अतः यह दिन उत्सव के रूप में सोत्साह मनाया जाता है। परन्तु जो नये लोग हैं, उनके मन में यह प्रश्न आ रहा होगा कि यह आश्रममें क्यों मनाया जा रहा है? यदि यहाँ पवित्र वातावरण में यह नहीं मनाया जाय, तो शहर में उद्घाटन आदि के नाम से आप लोग बुला लेते हैं। परन्तु उसमें उत्सव का लक्ष्य विलीन हो जाता है। जहाँ जीवन ऐसे अवसरों पर पतन के निम्न धरातल पर आ जाय, जहाँ पड़ोस की बहन को बहन कहने के लायक नहीं रहते

हैं–ऐसा वातावरण बन जाय, तो उत्सव तो एक तरफ रह जाता है और हजारों लड़के लड़कियाँ इन अवसरों पर अपने मन के भुलावेमें मार्गभ्रष्ट हो जाते हैं। इनके निमित्त जो लोग चन्दा आदि देकर सहयोग करते हैं उनसे भी मैं निवेदन करता हूँ कि सोच समझकर अच्छे कार्यों में दान देवें, अन्यथा यदि उनके द्रव्य का दुरुपयोग हुआ, समाज को उत्थान की वजाय पतन का रास्ता मिला, तो पुण्य की जगह पाप के भागीदार बन जाएंगे।

हम सबको यहाँ पर जो इस प्रकारके कार्यक्रम होते हैं, उनसे पूरा लाभ लेते हुए आगे बढ़ना चाहिये और ऐसी जगह पर अंत में पहुंच जाएं कि जहां जाकर लौटना नहीं पडे। अभी नये लोग आए हैं, वे तो ठीक है प्रारंभिक लाभ ही ले पाएंगे, परन्तु जो काफी समय से आते जा रहे हैं, जिन्होंने पिछले शिविरों में भी भाग लिया है, उन्हें और आगे बढने की सतर्कता बरतनी चाहिये। यदि बर्तन (चित्त) साफ हो गया है तो उसमें खीर पकनी चाहिये, यदि खीर पकाकर खा ली है तो वह हजम होनी चाहिये, यदि हजम हो गई है तो उसका रक्त बनना चाहिये और रक्त बन गया है तो उससे शरीरको बल मिलना ही चाहिये। परन्तु यदि बर्तन ही गंदा रह गया तो क्या तो उसमें खीर पकेगी और क्या पचेगी और बल मिलेगा?

अगले ३ दिन ध्यान-योग शिविर के लिये हैं। उसमें कौन कौन भाग ले सकेंगे, क्या क्या उसके नियम आते हैं यह सब शाम को बताया जायगा।

जिसको जानने के बाद कुछ जानना शेष नहीं रहता असे तत्व का अनुभव कराना यह वेदांत की महानता है। व्यवहार में से ही धीरे धीरे उस तरफ बढ़ना पड़ता है।

शांडिल्य भक्ति सूत्र व नारद भक्ति सूत्रमें आया है–'तत्कीर्तनार्थं'। यानि यह रास और कीर्तन भी उसमें (उस तत्वकी प्राप्तिमें) सहायक है। चैतन्य महाप्रभु जब आत्मविभोर होकर नाचते थे, तो सब कुछ भूल जाते थे। योगी जंगलों में शेरों से भी नहीं डरते हैं। शेर उनके सामने कुत्ते की तरह पूँछ हिलाते हुए खड़े रहते हैं।

संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जिसके पास मन न हो। ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जिसके पास बुद्धि न हो। किसी के पास कम विकसित होती है, तो किसी के पास अधिक विकसित। जैसे जैसे विकसित होगी, हम अधिक आनन्द के निकट पहुँचते जाएंगे।

परमात्मा का अस्तिपना जड़ पदार्थों में भी मिलता है, परन्तु चेतनता को आभास अंतःकरण में होता है! (पपीता हाथमें लेकर) इस पपीते को देखने के लिये आँख चाहिये। वैसे ही परमात्मा को देखने के लिये विचार नेत्र चाहिये। बुद्धि नहीं जान सकती उस तत्व को, पर पा लेती है। व्यावहारिक बुद्धि नहीं, तात्विक बुद्धि। जहाँ वाणी पहुँच नहीं सकती, मन लौट आता है। इस बारे में हमने महापुरुषों से बहुत सुना है। उस पर विचार करें। हमारा जीवन व्यर्थ न जाए।

हमारे संकल्प ही हमें नचाते हैं। जो ठोस संकल्प होते हैं वे ही सफल होते हैं। बुरे हों अथवा भले, जो मजबूत होंगे वे ही हमें याद रहेंगे, फलेंगे और फिर स्वभाव बन जाएंगे। अतः संकल्प उठते समय सावचेत रहो

कि वे शुभ हैं कि नहीं? यदि शुभ हो तो ही उठने दें, नहीं तो विचारपूर्वक-बलपूर्वक रोक लो। उठने ही मत दो।

श्रीरंग अवधूत अपने आश्रम में पानी भरवाते थे, चक्की पिसवाते थे। वे चाहते तो ऐसे कामों के लिये कुछ लोग वेतन पर रख सकते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया और सबको इन कामों में जुटाए रहते थे। कल मेरे मन में यह बार बार विचार आ रहा था कि ऐसा हम भी करें तो? पानी आज भरवा लें। कल (यानी आज) शायद पानी की मशीन बन्द हो जाय। और हुआ भी ऐसा ही। यह जाने अनजाने जो संकल्प उठते हैं, उनका प्रभाव है। अब देखो, कई लोग नदीमेंसे पानी ला रहे हैं। इनको कितना सेवा में आनन्द आ रहा है!

एक राजा था। वह एक संत के पास गया और बोला, "मुझे आनन्द चाहिये।" संत ने कहा, "सब त्याग करके खाली होकर आओ।" राजाने जाकर अपने राज-पाट का त्याग किया, सम्पत्ति दरिद्रों में बाँट दी और अकेला संत के चरणों में पहुँच गया। संतने उसको सेवा का काम देते हुए कहा, "तुम्हारे लिये सेवा का यही काम है कि आश्रम का यह कचरा रोज गाँव के बाहर जो उकरड़ा (कचरा डालने की जगह) है, उसमें डाल आया करो।" कहाँ तो भूतपूर्व चक्रवर्ती राजा और कहाँ यह कचरा उठाकर बाहर डाल आने की सेवा! अन्य शिष्योंने कहा, "महाराज! यह काम तो हम कर लेंगे। इनको कोई दूसरी सेवा का काम दे दीजिये।" संत ने कहा, "यह कोई दूसरा है क्या? अपना है इसीलिये तो ऐसी सेवा का अवसर दिया है।"

प्रत्येक व्यक्ति आनन्द चाहता है। आनन्द शरीर में तो है ही नहीं। आनन्द तो अपने स्वरूप में ही है। साधक को जब अपने अन्दर के इस आनन्द का स्वाद आने लगता है, फिर वह भटक नहीं सकता। यदि भटक भी गया तो पुनः अपने पथ पर लौट आयेगा, क्योंकि उसने अपने अन्दर उस आनन्द का अनुभव किया है। जब एक बार उस अनिर्वचनीय आनन्द का उसने अनुभव कर लिया है, तो फिर वह उसे छोड़ना नहीं चाहता और पुनः पुनः उसी तरफ वह लौट आता है।

ईश्वर का सच्चा प्रेमी किसी से भयभीत नहीं होगा। यदि होता है, तो समझो अभी प्रेम का धागा कच्चा है। लोगों को भय तभी होता है, जब उसे ईश्वर व उसके कार्यों में पूर्ण विश्वास नहीं होता।

लोग कहते हैं, हमें ईश्वर दिखाओ तो हम माने कि ईश्वर होता है। अरे, लाखों लोग बोलें कि सूरज नहीं होता, तो क्या सूरज नहीं होता? लोग कहें आत्मा नहीं होती है, तो क्या आत्मा नहीं होगी? इसी बात पर मंसूर को फाँसी पर चढ़ा दिया था। जो अपनी प्रतिष्ठा, धन, स्त्री, पुत्र आदि में ही रमता है और उस परम तत्व को प्राप्त करने के लिये ईश्वरीय मार्ग में आगे नहीं बढ़ता, वह मूढ़ है। उसे अन्त में रोना पड़ता है। अपने मन में यह दृढ़ संकल्प करके साधना पथ पर आगे बढ़ते जाओ कि न यह हमारा दुर्लभ शरीर स्त्री के लिये है, न बच्चों के लिये, न दुकान के लिये है न मकान के लिये और न ऐसी ही अन्य तुच्छ चीजों को संग्रह करने के लिये। यह दुर्लभ शरीर आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये है। मजाल है

कि दूसरे लोग इसे भोग कर चले जायं और हम अपने लक्ष्य से वंचित ही रह जाय !...अपने मन को मजबूत बनाएं।

शबरी ने सारा जीवन राम के लिये लगा दिया तो राम को आना ही पड़ा। राजरानी मीरा को उसके रिश्ते-दारों ने जहर दिया, लोगों ने उसे पागल कहा, परन्तु मीरा ने अपना पथ नहीं छोड़ा और वह संसार सागर तर गई—

श्याम जे प्यार में मीरा हुई चरी
मीरा जगत मां वही तरी ॥ (सिंधी में)

राजा जनक के दरबारियों ने गार्गी को दिगम्बर अवस्था में देखकर मुँह फिरा लिया। गार्गी ने उनसे पूछा कि तुमने मुँह क्यों फिरा लिया ? दरबारी बोले, "तुम अबला को इस अवस्था में देखकर।" गार्गी ने दृढ़ता से कहा, "अबला तो तुम हो, जो अपना स्वामी अन्यत्र ढूँढ़ते हो। मैं तो अपना रक्षक, अपना स्वामी, अपना आप-आत्मा हूँ।" विदूषी गार्गी ने याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ भी किया था।

आत्मज्ञान स्त्रियों के लिये नहीं है, ऐसा नहीं है। जो ईश्वर के लिये चल पड़ते हैं, उनके लिये संसार के नाते-रिश्ते कोई कीमत नहीं रखते।

सुकरात को जहर दिया गया था, क्यों कि उसने आत्मा की अमरता की बात का प्रतिपादन किया था। सुकरात ने कहा, "इतने दिन तो इस शरीर को जीवित देखा, अब इसकी मौत भी देखूँगा।" सुकरात के रिश्तेदार और अनुयायी बहुत रोये, तो सुकरात ने कहा, "पागलों ! जो जहर पीयेगा, वही (शरीर) तो मरेगा। मैं तो शरीर हूँ ही नहीं। मैं तो अमर हूँ, मुझे कौन मार सकता है ? यह शरीर तो जिस दिन पैदा हुआ, उसी दिन मरने का सर्टिफिकेट साथ लेकर आया है।" राजा ने कहा, "तुम कह दो कि मैं सुकरात हूँ, मैं शरीर हूँ।" सुकरात ने कहा, "राजा ! मुझे यह जहर इतना कड़वा नहीं लगता जितना तुम्हारा यह कथन लगता है। क्योंकि तुम मुझे अपने आदर्श से गिराना चाहते हो।" सच्चा ज्ञानवान हो और उसे विष्णु भगवान भी आकर कह दे कि तुम जीव हो, जन्मने मरने वाले हो, तो वह कहेगा, "आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की कि आपने दर्शन दिया, यह ठीक है; परंतु जिससे आपको देख रहा हूँ, वह तो मैं हूँ।"

'मैं आत्मा हूँ, आनन्द स्वरूप हूँ' ऐसा बोध एक बार सद्‌गुरु ने जिसे करा दिया है, उसे यदि कोई कहे कि ऐसा नहीं है ऐसा है, तो भले ही वह बाप हो, भाई हो अथवा या कोई देवता हो, परन्तु उसके लिये वह बात अमान्य ही होगी। शक्कर का स्वाद एक बार ले लिया और यह मालूम हो गया कि वह मीठी है, तो उसे कोई कितना ही कहे कि ऐसा नहीं है, तो वह मानेगा क्या ?

सुकरात को कहा गया, "कहो खुदा है।"

सुकरात ने कहा, "खुदा हूँ।"

एक नमक का ढेला समुद्र में जाकर गल गया, उसके साथ एकाकार हो गया, अब उसे कहो कि तुम नमक का ढेला हो, तो वह कैसे कहेगा ? वह तो समुद्र बन गया।

सुकरात ने कहा, "मुझे जीने मरने से कोई सरोकार

नहीं है" और जहर पी गए। प्रकृति की चीजें प्रकृति पर असर करेगी। शरीर प्रकृति का है। ज्ञानवान महापुरुषों को भी सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख आते हैं, परन्तु वे जानते हैं कि यह सब शरीर को है, अतः विचलित नहीं होते। मूढ़ों को दुःख लगता है, क्यों कि वे शरीर के साथ एक हो जाते हैं। हमारे मित्र का एक्सीड़ेन्ट होता है, तो हमें गहरा धक्का लगता है और वैसे हमेशा एक्सीडेन्ट होते रहते हैं, उससे कुछ नहीं होता। हमारे घर की दीवाल गिर जाय, तो दुःख होता है। क्योंकि उसके साथ हमारा तादात्मय है। यह 'मैं' और 'मेरा' पना ही तो दुःखका कारण है। सुकरात को यह सब ज्ञान था।

सुकरात ने जब जहर पीया तो शिष्य उदास हो गए, रोने लगे। तो उसने कहा, "पागलों, जिसने जहर पीया है, वही नहीं रो रहा, तो तुम क्यों रो रहे हो? जहर तो शरीर ने पीया है। अब यह असर कर रहा है। मौत आगे बढ़ रही है, परन्तु यह मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। मैं तो अमर हूँ।"

मंसूर को फाँसी दी गई तो उसने कहा, "मुझे कौन मार सकता है? मैं चान्द होकर चमकता रहूँगा, सूरज होकर चमकता रहूँगा।" अकाल-अभेद-अछेद्य वस्तुको कौन मिटा सकता है!

नैनं छिन्दंति शास्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारूतः॥ (गीता-अ २)

(हे अर्जुन! न तो इस आत्मा को शस्त्र आदि काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न जल गीला कर सकता है और न ही वायु सुखा सकती है।)

उस अविनाशी को तुम क्या कर सकते हो? घड़े को फोड़ सकते हो, परन्तु उसके आकाश को मिटा सकते हो? बर्तन में पानी है, पानी सूख गया, तो भी आकाश है। आप कहेंगे, यह दीवार है, इसमें आकाश नहीं है। दीवार में कीली ठोको। यदि आकाश नहीं होता तो कीली कैसे घुसती? आप कहेंगे, लोहे में आकाश नहीं है। लोहे को गर्म करो, वह लाल हो जाता है। अगर आकाश नहीं होता तो उसमें लालिमा को जगह कैसे मिली? इस भूताकाश में सब हैं। इसके बाहर कोई नहीं। इससे सूक्ष्म होता है चित्ताकाश। उसकी ताकत से जब कोई संकल्प करता है, तो वैसा ही हो जाता है। इससे भी सूक्ष्मतम होता है-चिदाकाश!

सुकरात को समझाया गया कि तुम केवल कह दो कि, 'ईश्वर है,' सुकरात ने कहा, "तो फिर मैं कौन हूँ? मैं क्या हड्डी हूँ, मैं क्या माँस हूँ, मैं क्या रक्त हूँ? शरीर को बचाने के लिये मैं क्या अपने ईश्वरत्व की घोषणा से नीचे उतर जाऊँ? ...यह नहीं हो सकता।"

शरीर जन्मता है-मरता है, रोगी होता है-निरोगी होता है, बनता है-बिगड़ता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पाँच भूतों से शरीर बना हुआ यहाँ पड़ा है और उन्हीं में मिलेगा। तुम क्यों रोते हो? घड़ा (शरीर) फूटा तो रोना क्या? जो मौत का डर रखता है, वह बेवकूफ है, मूढ़ है। मौत आ जाय, वह अच्छी है, परन्तु उसका डर अच्छा नहीं। बद अच्छा बदनाम बुरा। बेइज्जती हो जाय वह अच्छी, बेइज्जती का डर अच्छा नहीं। दुःख न आ जाय, यह डर अच्छा नहीं है। यह कायरों का,

निर्बलों का रास्ता नहीं है। नाऽयमात्मा बलहीनेन लभ्यः।' शरीर के वीर तो कई बनते हैं, परन्तु आत्म वीर(आत्मज्ञानी) बनें तो एक के पीछे कई लाखों शरीर-वीर घूमते फिरते हैं। छोड़ो इस जगत के विषयों की आस। यह पर्दा (विषयों का) जब खत्म हो जायगा, तब हो जायेगा आत्मज्ञान!

लोग सद्गुरुका दर्शन करते हैं, क्योंकि उनके दर्शनों से अन्दर की चिन्ताएं मिटती हैं और चित्त को शांति मिलती है। इसीलिये कबीर दासजी कहते हैं-

सत्गुरु मेरा शूरमा, करे शब्द की चोट,
मारे गोला प्रेम का, हरे भरम का कोट।

बाहर के शूरमा तो शरीर की पिटाई करते हैं, परन्तु सत्गुरु तो शब्दों की प्रेमपूर्वक बार बार ऐसी आध्यात्मिक चोट करते हैं कि अज्ञान का किला भूमिसात हो जाता है और शिष्य को अपने आत्मदेव से मिला देते हैं। फिर तो कबीर के शब्दों में ऐसी स्थिति बन जाती हैं—

"लाली देखन मैं चली मैं भी हो गई लाल"

स्वामी रामतीर्थ इसीको इस प्रकार कहते हैं-

"हम न तुम दफ्तर गुम।"

और एक संत कहते हैं, "नमक का पुतला गया समुद्र की थाह लेने, परन्तु वह स्वयं ही जलमें घुलकर समुद्र बन गया। ऐसे ही कुछ लोग जाते हैं संत की थाह लेने, वहाँ उनको आनन्द की थोड़ी लहर आती है। यदि उनके अन्दर थोड़ी जिज्ञासा रही और उस आनन्द के लिये बार बार आते रहे, तो कभी संत की ऐसी चोट लगती है कि उनके अज्ञान की

दीवार ढह जाती है और ये भी संत बन जाते हैं। सेवा करते करते सेवक से स्वामी बन जाते हैं।

ईश्वर के रास्ते चलने वालों के पीछे धन, ऐश्वर्य, सत्ता, मान आदि तो पालतू कुत्ते की तरह पूंछ हिलाते आते हैं। लेकिन वे उनको ठुकरा देते हैं, उनमें फंसते नहीं। फिर रिद्धि सिद्धि, निन्दा आदि विघ्न भी आते रहते हैं, परन्तु एक बार ज्ञान हो जाय, फिर ये कुछ नहीं कर सकते।

(रेवाचन्द की ओर संकेत कर)

यह रिलरी पहलवान है। यह उस कुटिया में ध्यान करने बैठा था, तो इसको ध्यान में एक डरावना राक्षस आया। इसने ऐसा भाव किया कि तुममें भी तो मैं ही हूँ, फिर मैं क्यों डरूँ और सद्गुरु को याद किया तो गायब हो गया। क्यों रिलरी?

रेवाचन्द—जी स्वामीजी। पहले तो थोड़ा डर सा लगा, फिर सत्संग की बात याद आ गई कि इसमें भी मैं ही तो हूँ, फिर क्यों डरूँ? फिर आपको याद किया तो वह अंतर्धान हो गया।

स्वामीजी—कल तीन साधिकाएं नहीं मिल रही थी। शामको काफी देर से मिली तो पता लगा कि नदी में कहीं ध्यान करने गई थी। परन्तु वे बहुत पास पास बैठी थी। दूर दूर बैठना चाहिये। कभी घूमने भी जावें तो अकेले ही जाना चाहिये, साथ साथ नहीं। फिर अकेले में जब भय का प्रसंग आवे और कहीं आसपास किसी का सहारा नहीं मिलता, तब आत्मभाव जाग्रत होता है।

निर्भयता आती है। जितनी निर्भयता होगी, उतना ज्ञान मजबूत होगा। उसका स्वाद आयेगा। पिछले वर्ष आबू की अग्नेश्वर गुफा में कुछ साधकों को बड़ी निर्भयता आई। एक तो वह है भी बड़ी भयावनी जगह। फिर रात्रि को मैंने कुछ जानवरों (सिंह, रीछ आदि) की आवाजें की तो पहले तो उनको थोड़ा भय महसूस हुआ। लेकिन दरवाजे के पास उनको मेरी अंगुलियाँ नजर आ गईं, तो वे समझ गए कि अरे, बाहर कोई जानवर नहीं है, मनुष्य ही है, और मनुष्य दूसरा कोई हो नहीं सकता, स्वामीजी ही होंगे। इससे भेद खुल गया और ये सब जोरसे बोल उठे-'स्वामीजी-स्वामीजी।' फिर सब मजा बिगड़ गया।

सुनकर सब हँसने लगते हैं।

स्वामीजी – उसमें से कुछ साधक यहाँ बैठे भी हैं। क्यों रेवाचन्द? यह रेवाचन्द भी था वहाँ।

रेवाचन्द – जी, उधर का रास्ता बड़ा बीहड़ है। उस दिन आपने मुझे अकेला आगे भेज दिया था। मैं तो आगे जाकर रास्ता भूल गया। वापस लौटने लगा, लेकिन लौटते समय पुनः रास्ता ध्यान में आ गया। आप तो वहाँ पहले ही पहुँच गये थे, शायद शोर्ट-कट से पहुँचे होंगे। ऐसे ही एक बार आगे कुछ साधक जा रहे थे, तो आपने कहा था कि तुम रास्ते के आजूबाजू झाड़ियों में छिपते छिपाते कुछ जानवरों की आवाजें मुंहसे निकालो। मेरे तो स्वयं के अन्दर में धड़क-धड़क हो रहा था कि मैं जानवरों की आवाज निकालने जाऊँ और उधर कहीं असली जानवर ही मेरे सामने आवाजें निकालने के लिये आ खड़े हुए, तो मैं क्या करूँगा... ?

सुनकर सब हँस पड़ते है।

स्वामीजी : वहाँ एक बार एक मिलिटरी का सरदार आया था। वह मेरे से कहने लगा, "स्वामीजी! आप साथ हैं, इसलिये चल रहा हूँ, बाकी हम तो कहीं बन्दूक के बिना ऐसी जगहों में नहीं जाते।" मैंने पूछा, "डर किसका हैं?" वह बोला, "ऐसे ही कोई जंगली जानवर आकर पीछे से हमला न करे।" मैंने फिर पूछा, "जब बन्दूक नहीं होती, तब किसका सहारा होता है?" उसने आकाश में ऊँगली उठा कर कहा, "फिर तो उसी (भगवान) का सहारा होता है।" मैंने कहा, "जब उसका सहारा है, हमारा रक्षण उनके हाथ में है, तो जो जंगली जानवर हैं, वे भी उसी के हाथ में हैं और वह तो तुम्हारा अपना आप आत्मदेव है। फिर भय किससे, किसको और क्यों? निर्भय होकर चलो।"

निर्भयता ही जीवन है। भय ही मौत है। मेरे पास न तो आदमी आते हैं न औरतें। मेरे पास तो साधक आते हैं। एक बार शंकर की पत्नी को भेजा था गुफा में वह १०–१२ दिन रह कर आई थी। मीरांबेन भी रह कर आई है। एक बार (लड़कियों की तरफ देखकर) इन तीन लड़कियों को भेजा था। इनका हार्ट थोड़ा कमजोर है। फिर भी ये वहाँ रहकर आईं। इनमें अब बड़ी निर्भयता आ गई है।

जहाँ भय है वहीं जाओ। जहाँ दुःख है वहीं जाओ। जहाँ प्रतिकूलता है वहीं जाओ तो प्रतिकूलता अनुकूलता बन जाती है। भय और दुःख भाग जाते हैं। और अनुकूलताएँ सब जगह होती भी नहीं। कोई यह

न सोचे कि ऐसा हो जाय तब भजन करूँगा। तो वह भजन नहीं कर सकेगा। हम मिट जायेंगे और प्रतिकूलताएँ हमारे पर हँसेगी। इसलिये विपरीत परिस्थिति का सदैव साहस से सामना करो।

सदैव मन हमें भ्रम में डालता है और दुःखी करता है। सब अच्छा है। हम परिवार के सुखों के लिये यह करूँ, वह करूँ में लगे रहते हैं और जिन्दगी घिसती जाती है और अन्त में नतीजा क्या? सब व्यर्थ! क्यों कि जो बनाओगे वह आखिर तो छूटेगा ही!

एक साधक से हमने पूछा, "बताओ कितने दिन रहोगे?" उसने कहा, जैसी आपकी आज्ञा होगी।" मैंने कह दिया, "अच्छा रहो।" फिर दो दिन बाद ही उसके अन्दर खुस-पुस चलने लगी कि कल जाऊँ या परसों। ऐसा क्यों होता है? अरे, यह मन है। इसको समझाओ, नहीं तो यह चढ़ बैठेगा हम पर। यह चढ़ बैठा है हम पर, इसीलिये तो सदियों से हमें भटका रहा है। अतः इसको अच्छी प्रकार पहचान कर इसको शिक्षा देते रहो। जब यह कुछ इच्छा करे तब कहो, 'नही' और जब कुछ इच्छा न करे तब कहो, 'वही करूँगा'। आप ध्यान करने बैठेंगे तो यह दूर भागेगा। जब यह मिठाई की इच्छा करें, तब इसके आगे नीम की (कड़वी) चटनी रखो और बोलो इसको, "हजूर! यही है मिठाई।" और यदि आपने मिठाई खिला दी, तो अगली बार फिर मांगेगा। अतः इस पर पूरा समझ-दारी से नियंत्रण रखो।

जिस भाव से मित्र को देखें उसी भाव से शत्रु को

देखें। यह है आत्मभाव की पराकाष्ठा। मैं जानता हूँ कि मेरी कौन निन्दा करते हैं, परन्तु उनको भी मैं चाहता हूँ। ऐसा अभेद भाव होना चाहिये। राजा जनक ऐसे ही ज्ञानी थे। उनके एक हाथ पर चन्दन का लेप कर दिया जाये और दूसरे हाथ पर कीचड़ मल दिया जाय, परन्तु उनके लिये दोनों बराबर था। ऐसा अभेद भाव होना चाहिये।

हर्ष और शोक के प्रसंगों में समान रहो। दुःख और विपत्ति आवे तो समझो ईश्वर तुम्हारे साथ खेल रहे हैं, फिर किससे डरना? पहले अपने को जीतो, फिर समस्त जगह तुम्हारे कदमों में होगा।

शुभ भी आयेगा वह भी दास है और अशुभ भी आयेगा उसे भी दास बनाकर देखो! अनुकूलता भी आयेगी और प्रतिकूलता भी आयेगी। परन्तु अपने ऊपर किसी को स्वामित्व मत जमाने दो। अच्छा बुरा दोनों को एक ही दृष्टि से देखो! तुम अपने आप को इनसे ऊपर रखो।

कोई कहे, तुम अच्छे हो तो अच्छे बन जाओ और बुरे हो तो बुरे बन जाओ, ऐसा नहीं। यदि ऐसा बन गए तो समझो अभी तुम अपने शरीर को ही मैं मान रहे हो। तुम्हारे बारे में दूसरे भले बुरे का जजमेंट दें और तुम अपने को भला या बुरा मान लो, ऐसा मत होने दो। दूसरे लोग जो मन और इन्द्रियों में बैठकर जजमेंट देते हैं और उनके जजमेंट को आप मान लेते हैं तो आप भी उनके जैसे ही मूढ़ हैं।

इसीलिये कई बार संतों का व्यवहार हमें समझ में नहीं आता। क्यों कि वे पारावार दृष्टि रखते हैं। मन इन्द्रियों से परे सत्ता में उनका अधिकार है और हम हमेशा मन व बुद्धि में बैठकर ही सोचते हैं। फिर कैसे मेल

बैठे? इसीलिये मिटकर संतों के पास जाना पड़ता है। हम कहते हैं, "मेरी इच्छा तो सिनेमा जाने की है, सत्संग में जाने की नहीं है।" अरे, यह तुम्हारी इच्छा नहीं है। यह मन की इच्छा है। मन तुम्हें धोखा दे रहा है। जब सद्गुरु हमें यह समझते हैं और सिनेमा नहीं जाने देते तब हमें बड़ा खराब लगता है, क्योंकि उस समय हम मन बुद्धि के प्रभाव में होते हैं। अतः मन के दास मत बनो, उसके स्वामी बनो। उसके कहने में मत चलो, उसे अपने कहने में चलाओ।

अपने जीवन का चौथा हिस्सा सत्संग को दो। चौथा नहीं तो आठवा, नहीं तो सोलहवा, सोलहवा नहीं तो पचासवा और पचासवा नहीं तो ...सौवा हिस्सा ही दो, सद्गुरु के सत्संग में। देखो कितना होता हैं? फिर देखो, दुःख कहाँ रहते हैं।

अपने जीवन में समझ का उपयोग करो! मुर्दा शरीर को कितना ही सजा लो, अच्छे अच्छे कपड़े पहना दो, सुगंध लगा दो उसे क्या? उस पर कोई परिणाम नहीं। न तो वह हरी झण्डी बतायगा न ही लाल झण्डी। ऐसे बन जाओ। इच्छाओं को आश्रय मत दो। हमारी कोई इच्छा नहीं, जैसे वह रखेगा वैसा रहेंगे। हर हाल में मस्त, हमारी आरज़ू है न जूस्तजूँ। राजी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रजा है।

राम राखे तेम रहिये उद्धवजी
राम राखे तेम रहिये.......। (भजन)

शरीरको राम राखे ऐसा रहने दो, आप अपने आत्मभाव में रहो।

ॐ ॐ ॐ

परम की लीला

परम पूज्य
संत श्री
आशारामजी
महाराज

प्रभु की चेतना जब धरती को धन्य बनाना चाहती है, तब क्या लीला होगी यह निश्चित करना मुश्किल है। वैसे तो यह चेतना ब्रह्माण्ड के अणु-अणु में क्रियाशील है। पर विशेष रूप से उसका प्राकट्य जब होता है तब यह लीला शिखर पर पहुंचती है। पूज्य संतजी का जीवन परम की लीला का विस्तार है।

सब दुखों से छूटने का ब्रह्मविद्या ही एक मात्र सहारा है। संत इसी विद्या को पढ़ाते हैं। यह विद्या हर कोई नहीं पढ़ा सकता। यदि हर कोई पढाएगा तो उस का प्रभाव नहीं होगा। जिन के आचरण में यह उतरी है, वे पढाएंगे तो उसका निश्चित अलौकिक लाभ होगा।

अहमदाबाद के पास मोटेरा गांव के निकट पवित्र साबरमती नदी के तट पर बिराजमान 'पूज्य श्री' का जीवन एवं इसी विद्या सम्बंधी उपदेश अनेकों का मार्गदर्शक बन रहा है।

आवरण-दर्शन प्रिन्टर्स, सलापस रोड, अहमदाबाद-१.